भारत कुकिंग कोल लिमिटेड

वी.

एम.एस. अन्नपूर्णा निर्माण

29 अगस्त, 2003

[वी. एन. खरे, सीजे। और एस. बी. सिन्हा, जे.]

मध्यस्थता अधिनियम, 1940; सं .14, 15, 16, 29 और 30:

निर्माण का अनुबंध-मध्यस्थता खंड-विवाद-मध्यस्थ ने ठेकेदार के पक्ष में उस पर ब्याज के साथ अधिनिर्णय दिया-न्यायालय ने अधिनिर्णय को एक नियम बनाते हुए ब्याज नहीं दिया-कंपनी की अपील और ठेकेदार के हित के लिए आवेदन ट्रायल कोर्ट द्वारा खारिज कर दिया गया। गया। अपील खारिज कर दी गई लेकिन उच्च न्यायालय द्वारा ब्याज के लिए आवेदन की अनुमति दी गई-आयोजितः चूंकि निचली अदालत द्वारा कानून के प्रावधान प्रावधान के संदर्भ में ब्याज की अनुमति नहीं थी इसलिए उच्च न्यायालय अपनी पुनरीक्षण शक्ति का प्रयोग करते हुए इसे प्रदान नहीं कर सकता था।

मध्यस्थ का क्षेत्राधिकारः क्षेत्राधिकार का विस्तारः अनुबंध की शर्तों तक सीमित चूंकि मध्यस्थ निर्णय देते समय प्रासंगिक सामग्री को ध्यान में रखने में विफल रहा ,

इसलिए उसका आदेश कानून में गलत दिशा निर्देश के-बराबर होगा, कुछ मुद्दों पर विवाद नए सिरे से निर्णय देने देने के लिए उच्च न्यायालय के एक सेवानिवृत्त न्यायाधीश को संदर्भित किया जाता हैसिविल प्रक्रिया संहिता, 1908-धारा 152।

'अधिकार क्षेत्र के भीतर एक त्रुटि' और 'अधिकार क्षेत्र से अधिक की त्रुटि'-के बीच का भेदचर्चा की गई।-

अपीलार्थी कंपनी और प्रत्यर्थी ठेकेदार ने झोपड़ियों के-निर्माण के लिए एक अनुबंध किया। अनुबंध में एक मध्यस्थता खंड था। चूंकि काम समयपर पूरा नहीं हुआ था और पक्षों के बीच विवाद उत्पन्न हुए थे , इसलिए अनुबंध के मध्यस्थता खंड को लागू किया गया था। मध्यस्थ ने ठेकेदार के पक्ष में एक पुरस्कार दिया , उस पर ब्याज के साथ कुछ राशि प्रदान की। अधीनस्थ न्यायाधीश न्यायालय ने न्यायालय का पुरस्कार नियम बनाया लेकिन ब्याज की अनुमति नहीं दी। पुरस्कार और याचिका के खिलाफ अपील के साथ साथ ब्याज देने के-लिए समीक्षा याचिका को निचली अदालत ने खारिज कर दिया था। हालाँकि, उच्च न्यायालय ने पुनरीक्षण याचिका को स्वीकार कर लिया और ब्याज को स्वीकार कर लिया, लेकिन कंपनी की अपील को खारिज कर दिया। इसलिए वर्तमान अपील।

अपीलार्थी के लिए यह तर्क दिया गया था कि चूंकि प्रत्यर्थी ने अंतिम विधेयक को स्वीकार कर लिया था ,

इसलिए वह आगे दावा दायर नहीं कर सकता था ; कि चालू बिलों को प्रत्यर्थी को दिए गए अग्रिम से समायोजित करने की आवश्यकता थी; कि प्रत्यर्थी सामग्री की कीमत में वृद्धि के खिलाफ दावा नहीं कर सकता था; और यह कि मध्यस्थ ने अनुबंध प्रासंगिक सामग्री की/ शर्तों की अनदेखी करते हुए कुछ दावों को स्वीकार करने में अवैधता की थी।

प्रत्यर्थी की ओर से, यह प्रस्तुत किया गया था कि चूंकि अपीलार्थी ने पुरस्कार की वैधता को चुनौती नहीं दी थी , इसलिए सर्वोच्च न्यायालय अधिनियम की धारा 30 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में हस्तक्षेप नहीं कर सकता था।

आंशिक रूप से अपीलों को अनुमति देते हुए , न्यायालय ने निर्णय लिया:

1.1। केवल इसलिए कि प्रत्यर्थी ने अंतिम विधेयक को स्वीकार कर लिया है, इसका मतलब यह नहीं होगा कि वह कोई दावा करने का हकदार नहीं था। एक घोषणा के अभाव में कि प्रतिवादी कोई और दावा नहीं करेगा , उसे किसी भी दावे को उठाने से रोका या रोका नहीं जा सकता है। न्यायालय ने अधिनियम की धारा 29 के संदर्भ में कोई ब्याज नहीं दिया। यह एक लिपिकीय या अंकगणितीय गलती के रूप में नहीं था। जिसे न्यायालय द्वारा अभ्यास में ठीक किया जा सकता है

सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 152 के अधीन अपनी शक्ति काइन परिस्थितियों में ., प्रत्यर्थी को या तो इसके खिलाफ अपील करनी थी या पुनर्विचार याचिका दायर करनी थी। चूंकि न्यायालय सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 152 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग नहीं कर सकता था, इसलिए उच्च न्यायालय अपने पुनरीक्षण अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए इसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकता था।]127-एच, 128-बी[सी-

1.2. मध्यस्थ का अधिकार क्षेत्र अनुबंध के चार कोणों- तक ही सीमित होना चाहिए। वह समझौते के एक महत्वपूर्ण खंड को नजरअंदाज नहीं कर सकते थे.]129-सी[डी-

1.3. तत्काल मामले में, वह राशि जो जुर्माने के रूप में काट ली गई थी और न्यायोचित नहीं पाई गई थी, वापस कर दी जाएगी। सामग्री वृद्धि से संबंधित दावे पर विचार करते समय, मध्यस्थ को प्रासंगिक प्रावधानों के साथ - साथ समझौते में निहित प्रासंगिक तथ्यों और पक्षों के बीच किए गए पत्राचार को भी ध्यान में रखना चाहिए था। यह अच्छी तरह से तय किया गया है कि मध्यस्थ मनमाने ढंग से, तर्कहीन रूप से , मनमाने ढंग से या अनुबंध से स्वतंत्र रूप से कार्य नहीं कर सकता है। (129-E, 130-D-EI)

एसोसिएटेड इंजीनियरिंग बनाम आंध्र प्रदेश सरकार , [1991] 14 SCC 93 और मिस। सुदर्शन ट्रेडिंग कंपनी

बनाम सरकार। केराए/, [1989 (12) एस .सी .सी .38, पर भरोसा किया

1.4. अधिकार क्षेत्र के भीतर त्रुटि और अधिकार क्षेत्र से अधिक त्रुटि के बीच एक स्पष्ट अंतर है। मध्यस्थ की भूमिका अनुबंध की शर्तों के भीतर मध्यस्थता करना है। पक्षकारों ने अनुबंध के तहत उसे जो दिया है , उसके अलावा उसके पास कोई अधिकार नहीं है। यदि उसने अनुबंध से परे यात्रा की है, तो वह अधिकार क्षेत्र के बिना कार्य करेगा, हालांकि, यदि वह अनुबंध के पैरामीटर के भीतर रहा है , तो उसके पुरस्कार पर इस आधार पर सवाल नहीं उठाया जा सकता है कि इसमें रिकॉर्ड के चेहरे पर स्पष्ट त्रुटि है।)130-एच, 131-ए(बी-

हैल्सबरीज़ लॉज़ ऑफ़ इंग्लैंड चौथा संस्करण, वॉल्यूम। 2 और मस्टिल और बॉयड द्वारा 'वाणिज्यिक मध्यस्थता', पृष्ठ 598, संदर्भित।

1.5. मध्यस्थ ने कुछ मदों के संबंध में पुरस्कार पारित करते समय अनुबंध के प्रासंगिक खंडों को ध्यान में रखने में विफल रहा और/ या उपेक्षा की, और न ही उसने सही तथ्य पर पहुंचने के उद्देश्य से प्रासंगिक सामग्री को ध्यान ध्यान में रखा। इस तरह का आदेश कानून में गलत दिशा के बराबर होगा। [138-डी-ईआई

अलोपी प्रसाद एंड संस लिमिटेड बनाम भारत संघ , (19601.2 SCR 793; नैहाटी जूट मिल्स लिमिटेड बनाम ख्यालीराम जगन्नाथ, (1968-11SCR821; उड़ीसा

राज्य बनाम दंडासी साहू , [1988) 4 SCC 12; K.P. पौ/ ओस बनाम केरल राज्य [19751.2 SCC 236; KV जॉर्ज बनाम सरकार के सचिव, जल और बिजली विभाग, त्रिवेंद्रम, (1989) 4 SCC 595; सतीश कुमार बनाम सुरिंदर कुमार , AIR (1970) SC 833; भारत संघ बनाम जैन एसोसिएट्स एंड अन्र, (1994) 4 SCC 665; सिक्किम सुब्बा एसोसिएट्स बनाम सिक्किम राज्य , [2001) 5 scc 629; महाराष्ट्र राज्य विद्युत बोर्ड बनाम स्टेरिलाइट इंडस्ट्रीज (भारत) और अन्र (2001) 8 SCC 482; W.B. राज्य भंडारण निगम और ए. एन. आर. वी. सुशी! , [2002] SCC 579; भारत कोकिंग कोल लिमिटेड बनाम LK आहूजा एंड कंपनी, (2001) 4 SCC 86 और इस्पात इंजीनियरिंग एंड फाउंड्री वर्क्स , B.S. सिटी, बोकारो बनाम स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड, B.S. सिटी, बोकारो, (2001) 6 सेक. 347, विशिष्ट।

2. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि मामला दस्तावेज़ की शुद्ध व्याख्या से संबंधित है जो कानून के प्रश्न को जन्म देता है और इसके बजाय और मामले को नामित मध्यस्थ को प्रेषित करने के स्थान पर , आइटम संख्या के दावे के संबंध में विवाद। 3, 7 और 11 को श्री न्यायमूर्ति D.N को संदर्भित किया जाता है। प्रसाद , झारखंड उच्च न्यायालय के एक सेवानिवृत्त न्यायाधीश , ऐसे नियमों और शर्तों पर जिन पर पक्षों द्वारा पारस्परिक पारस्परिक रूप से सहमति हो सकती है। (138-F-G)

सिविल अपीलीय न्यायनिर्णयः सिविल अपील सं. 1997 का 5647-48।

मूल आदेश सं. 2 से अपील में पटना उच्च न्यायालय के दिनांक 29.4.97 के निर्णय और आदेश से। 169/95 (R) और C.R. नं. 1996 का 12 (R).

अपीलार्थी की ओर से अजीत कुमार सिन्हा।

उत्तरदाता के लिए एस.बी. उपाध्याय ।

न्यायालय का निर्णय दिया गया था

एस.बी. सिन्हा, जे ये अपीलें पटना उच्च न्यायालय , रांची पीठ, रांची द्वारा मूल आदेश सं .29-4-1997 से अपील में पारित किए गए निर्णय और आदेश के विरुद्ध निर्देशित की गई हैं। 1995 का 169 (आर जिसके द्वारा और जिसके (अधीन अधीनस्थ न्यायाधीश, 4था न्यायालय, धनबाद द्वारा शीर्षक .वाद सं (माध्यस्थम्)1994 का 109 खारिज कर दिया गया था।

तथ्य.

मामले का मूल तथ्य विवाद में नहीं है। यहां पक्षों ने 140 अस्थायी झोपड़ियों के निर्माण के लिए एक अनुबंध किया, जिसकी अनुमानित लागत 49,45,447.81 रुपये थी। इसमें प्रतिवादी को एक औपचारिक कार्य आदेश जारी किया

गया था। समझौते के संदर्भ में पूरा काम चार महीने की अवधि के भीतर पूरा किया जाना था।

उपरोक्त कार्य के लिए पक्षों द्वारा और उनके बीच एक एक औपचारिक अनुबंध किया गया था। उक्त अनुबंध में एक एक मध्यस्थता समझौता था। उक्त संविदात्मक कार्य कथित रूप से प्रत्यर्थी द्वारा निर्धारित अवधि के भीतर पूरा नहीं किया गया था, जिसके लिए कार्य को पूरा करने के लिए 31-12-1986 तक समय बढ़ाने का अनुरोध किया गया था। समय के और विस्तार की मांग की गई और समय-समय पर-अनुमति दी गई।

पक्षों के बीच विवाद और मतभेद उत्पन्न होने के कारण मध्यस्थता समझौते को लागू किया गया था। अपीलार्थी कंपनी के मुख्य अभियंता को एकमात्र मध्यस्थ के रूप में नियुक्त किया गया था। उन्हें एक तर्कपूर्ण पुरस्कार देना था। मध्यस्थ के समक्ष प्रतिवादी ने 55,01,640.66 रुपये का दावा किया। इसमें अपीलार्थी ने 28,47,860.57 रुपये की राशि का प्रतिदावा भी किया। दिनांक 13-7-1994 के एक निर्णय के कारण , एकमात्र मध्यस्थ ने प्रत्यर्थी के पक्ष में 18% प्रति वर्ष ब्याज के साथ 18,97,729.37 रुपये की राशि प्रदान की। हालाँकि, अपीलार्थी के जवाबी दावे को खारिज कर दिया गया था।

उक्त पुरस्कार मध्यस्थता अधिनियम, 1940 (संक्षेप में में की धारा ("अधिनियम"14 के संदर्भ में न्यायालय का नियम बनाए जाने के लिए विद्वान अधीनस्थ न्यायाधीश ,

धनबाद के समक्ष दायर किया गया था। अपीलार्थी ने उक्त कार्यवाहियों में अधिनियम की धारा 15,16,30 और 33 के अधीन आपत्ति दायर की। विद्वत विचारण न्यायाधीश ने दिनांक 3-6-1995 के निर्णय के कारण अपीलार्थी की उक्त आपत्ति को खारिज कर दिया और अधिनिर्णय को न्यायालय का नियम बना दिया, जिसके विरुद्ध पुनः अपील की गई थी थी जिसे आक्षेपित निर्णय के कारण खारिज कर दिया गया था।

हालांकि, इस स्तर पर यह देखा जा सकता है कि विद्वत अधीनस्थ न्यायाधीश ने प्रत्यर्थी के पक्ष में डिक्री की तारीख से कोई ब्याज नहीं दिया , जिसके लिए सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 152 के तहत एक आवेदन दायर किया गया था। उक्त आवेदन को 12-12-1995 को अस्वीकार अस्वीकार कर दिया गया था, जिसके विरुद्ध प्रत्यर्थी ने उच्च उच्च न्यायालय के समक्ष सिविल पुनरीक्षण आवेदन को प्राथमिकता दी थी। दोनों अपीलें एमए नं इ .समें अपीलार्थी द्वारा दायर 1995 का 169 (आर और सिविल पुनरीक्षण (प्रत्यर्थी द्वारा दायर .सीआर नं1996 की धारा 12 (आर पर (पर एक साथ सुनवाई की गई। अपील का निपटारा करते समय, उच्च न्यायालय द्वारा विवादित फैसले के कारण पुनरीक्षण याचिका को अनुमति दी गई थी।

<u>प्रस्तुतियाँ</u>

अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान वकील श्री अजीत कुमार सिन्हा ने अन्य बातों के साथ साथ प्रस्तुत-

किया कि प्रतिवादी ने अंतिम विधेयक को स्वीकार कर लिया है, इसके द्वारा किया गया एक और दावा अस्वीकार्य है। विद्वान वकील ने बताया कि एक विशेष मामले के रूप में अपीलार्थी को 95% अग्रिम दिया गया था, जिसके लिए कोई ब्याज नहीं लिया जाना था। उक्त अग्रिम को चालू बिलों से समायोजित किया जाना था। मामले के उस दृष्टिकोण में , विद्वत वकील यह तर्क देगा कि मध्यस्थ ने दावा मद 3 और और 7 का मनोरंजन करने में अवैधता की है। विद्वत वकील यह आग्रह करेगा कि प्रत्यर्थी को विस्तार प्रदान किए जाने के बाद, विद्वत मध्यस्थ की ओर से इस बात पर विचार करना अनिवार्य था कि क्या प्रत्यर्थी कार्य पूरा होने में देरी के आधार पर हुए कथित नुकसान के लिए किसी मुआवजे का हकदार था, विशेष रूप से जब यह सहमति हुई थी कि समय का विस्तार दंड के भुगतान के अधीन दिया गया था। विद्वान वकील आगे प्रस्तुत करेगा कि अनुबंध के संदर्भ में प्रतिवादी को सभी आवश्यक कच्चे माल , अर्थात् सीमेंट, स्टील आदि की आपूर्ति की गई थी। जो झोपड़ियों के निर्माण के लिए होने वाली कुल लागत का लगभग 95% कवर करेगा और मामले की उस दृष्टि में प्रतिवादी को मूल्य में वृद्धि के माध्यम से किसी भी राशि का हकदार नहीं ठहराया जा सकता है।

श्री S.B. प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित विद्वान वकील, वकील, उपाध्याय, इसके विपरीत प्रस्तुत करेंगे कि अपीलार्थी द्वारा दायर आपत्तियों पर विद्वान अधीनस्थ न्यायाधीश और उच्च न्यायालय द्वारा पूरी तरह से विचार किया गया है और और इस तरह यह एक उपयुक्त मामला नहीं है जिसमें इस न्यायालय को हस्तक्षेप करना चाहिए। विद्वत वकील यह आग्रह करेगा कि यह अपीलार्थी का मामला नहीं है कि विद्वत विद्वत एकमात्र मध्यस्थ ने एक तर्कपूर्ण पुरस्कार पारित नहीं

नहीं किया और इस प्रकार , यह न्यायालय अधिनियम की धारा 30 के तहत अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए तब हस्तक्षेप नहीं करेगा जब दो विचार संभव हों। विद्वान वकील प्रस्तुत करेगा कि अधिनियम की धारा 30 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए , न्यायालय रिकॉर्ड पर लाए गए साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन नहीं करता है। इस संबंध में इस्पात इंग पर मजबूत निर्भरता रखी गई है। एंड फाउंड्री वर्क्स बनाम स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड [(2001) 6 एससीसी 347]

<u>निष्कर्ष</u>

केवल इसलिए कि प्रत्यर्थी ने अंतिम विधेयक को स्वीकार कर लिया है, इसका मतलब यह नहीं होगा कि वह कोई दावा करने का हकदार नहीं था। यह अपीलार्थी का मामला नहीं है कि अंतिम विधेयक को स्वीकार करते समय, प्रत्यर्थी ने स्पष्ट रूप से कहा था कि वह आगे कोई दावा नहीं नहीं करेगा। ऐसी घोषणा के अभाव में, प्रत्यर्थी को किसी भी दावे को उठाने से रोका या रोका नहीं जा सकता है। इसलिए हम श्री सिन्हा के उक्त निवेदन में कोई योग्यता नहीं पाते हैं। हैं।

श्री सिन्हा का यह कहना कि उच्च न्यायालय ने मध्यस्थता अधिनियम की धारा 29 के संदर्भ में डिक्री की तारीख से ब्याज देने में त्रुटि की है , सही प्रतीत होता है। विद्वत अधीनस्थ न्यायाधीश ने अधिनियम की धारा 29 के संदर्भ में कोई ब्याज नहीं दिया। यह एक लिपिक या अंकगणितीय गलती के रूप में नहीं था जिसे अदालत द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 152 के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए ठीक किया जा सकता था। इसलिए , प्रत्यर्थी का उपाय या तो इसके खिलाफ अपील करना था या

पुनर्विचार याचिका दायर करना था। चूंकि न्यायालय सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 152 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग नहीं कर सकता था , इसलिए उच्च न्यायालय अपने पुनरीक्षण अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए इसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकता था।

जहां तक बिलों के विलंब भुगतान का प्रश्न है मध्यस्थ मध्यस्थ इस तथ्य के निष्कर्ष पर पहुंचा है कि 10वीं आर/ ए बिल के संबंध में 4,85,403.31 रुपये की अत्यधिक देरी हुई थी, जिसका भुगतान 15-1-1988 को कार्य पूरा होने की तारीख से एक वर्ष के अंतराल के बाद किया गया था और अपीलार्थी को 343 दिनों की अवधि के लिए उक्त राशि पर हर्जाने @12% के रूप में 54,737.53 रुपये की राशि प्रदान की गई थी।

जहाँ तक दावा मद 3 का संबंध है, मध्यस्थ के समक्ष विचार के लिए जो प्रश्न उठा था वह यह था कि क्या कोई अतिरिक्त कार्य किया गया था या नहीं। अपीलार्थी का मामला मामला यह था कि प्रत्यर्थी ने कोई अतिरिक्त कार्य नहीं किया किया था। मध्यस्थ ने इस तथ्य पर पहुंचने के उद्देश्य से रिकॉर्ड पर सामग्री पर विचार किया था कि प्रतिवादी द्वारा कुछ अतिरिक्त काम किया गया था , जिसके लिए केवल 84,942.02 रुपये की राशि दी गई थी और 1,58,862.26 रुपये के बजाय।

तथापि, श्री सिन्हा अपनी इस दलील में सही हैं कि विद्वत मध्यस्थ ने अनुबंध में निम्नलिखित खंड के प्रभाव और तात्पर्य को ध्यान में नहीं रखा हैः

"हमेशा प्रदान किया गया किः

(ए) ठेकेदार/ ठेकेदार किए गए किसी भी अतिरिक्त काम काम के लिए किसी भी भुगतान का हकदार नहीं होगा जब तक कि उसे ऐसे अतिरिक्त काम के लिए अधीक्षण अधीक्षण अभियंता/ वरिष्ठ कार्यकारी अभियंता/ कार्यकारी अभियंता से लिखित रूप में आदेश प्राप्त न हो;

(ख) ठेकेदार/ ठेकेदार अतिरिक्त कार्य के साथ अगले महीने की 15 तारीख को या उससे पहले किसी भी महीने के दौरान किए गए ऐसे अतिरिक्त कार्य के लिए लिए अपना दावा प्रस्तुत करने के लिए बाध्य होगा ; और

(ग) ठेकेदार/ ठेकेदार ऐसे अतिरिक्त कार्य के संबंध में किसी भी भुगतान का हकदार नहीं होगा यदि वह/ वे उपरोक्त अवधि के भीतर अपना दावा प्रस्तुत करने में विफल रहता है।

यह सवाल कि क्या ठेकेदार का दावा नियमों का उल्लंघन करता है या नहीं , एक ऐसा मामला था जो मध्यस्थ के समक्ष विचार के लिए था। वह उसी पर विचार करने के लिए बाध्य था। ऐसे मामले में मध्यस्थ का अधिकार क्षेत्र अनुबंध के चार कोनों तक ही सीमित होना चाहिए। वह समझौते में एक महत्वपूर्ण खंड को नजरअंदाज नहीं कर सकता था; हालाँकि मध्यस्थ के लिए यह खुला हो सकता है कि वह अभिलेख पर सामग्री पर एक निष्कर्ष पर पहुंचे कि अतिरिक्त कार्य के लिए दावेदार का दावा अन्यथा उचित था।

दावा मद 4 को अस्वीकार कर दिया गया था।

दावा मद 5 के संबंध में पुरस्कार प्रश्नगत नहीं है। दावा मद 6 10,000 रुपये की जुर्माने की राशि के संबंध में

थी जिसे जुर्माने के रूप में काटा गया था और उचित नहीं पाया गया था, और इस प्रकार अपीलार्थी को उक्त राशि

हम दावा मद 7 और 11 से भी संबंधित हैं जो "कार्य के लंबे समय तक चलने के कारण होने वाले नुकसान" और "सामग्री वृद्धि" के शीर्षकों के तहत हैं। यह विवाद में नहीं है कि सामग्री की लागत का 95% सुरक्षित अग्रिम अनुबंध के संदर्भ में दिया गया था जो निम्नलिखित प्रभाव के लिए हैः

बीसीसीएल की नवीनतम मूल्य सूची (प्रति संलग्न) के अनुसार 4 (चार) महीनों के भीतर काम पूरा करने के लिए एक विशेष मामले के रूप में सामग्री की लागत का 95% की दर से सुरक्षित अग्रिम भुगतान किया जाएगा, जो बीसीसीएल के अनुमोदित प्रो फॉर्मा में आवश्यक मूल्य के गैर-न्यायिक स्टांप पेपर पर क्षतिपूर्ति बांड और आग, चोरी और नुकसान आदि के खिलाफ बीमा के अधीन होगा। सुरक्षित अग्रिम का भुगतान केवल उन वस्तुओं पर किया जाएगा जिन पर यह बी. सी. सी. एल. में देय था। इस प्रकार भुगतान किया गया सुरक्षित अग्रिम , बाद के चालू खाते के बिलों से या सामग्री की खपत पर , जो भी पहले हो, पांच समान किश्तों में वसूल किया जाएगा।

अपीलार्थी इस पर विवाद नहीं करता है। यह भी विवाद में नहीं है कि अपीलार्थी ने उक्त अग्रिम के संबंध में कोई ब्याज नहीं लिया है। यह भी विवाद में नहीं है कि अपीलार्थी द्वारा 51 रुपये प्रति बैग की दर से सीमेंट, 5460 रुपये प्रति प्रति मीट्रिक टन की दर से माइल्ड स्टील राउंड और 5810 रुपये प्रति मीट्रिक टन की दर से टॉर स्टील की आपूर्ति की गई थी। हालांकि, सामग्री वृद्धि से संबंधित दावा छह वस्तुओं वस्तुओं तक सीमित था जो कथित रूप से अपीलार्थी द्वारा

आपूर्ति नहीं की गई थीं , अर्थात् ईंटें, एसी शीट, कोण, दरवाजे, फ्रेम और शटर आदि।

जहाँ तक इन मदों का संबंध है, हमारी राय में, विद्वान विद्वान एकमात्र मध्यस्थ को समझौते में निहित प्रासंगिक प्रावधानों और पक्षों के बीच पारित पत्राचार को भी ध्यान में रखना चाहिए था। यह प्रश्न कि क्या काम चार महीने की अवधि के भीतर पूरा नहीं किया जा सका या एक या दूसरी शर्त पर मांगा गया विस्तार उचित था या नहीं , प्रासंगिक तथ्य हैं जिन पर मध्यस्थ द्वारा विचार किया जाना आवश्यक आवश्यक था।

अब यह अच्छी तरह से तय हो गया है कि मध्यस्थ मनमाने ढंग से, तर्कहीन रूप से, मनमाने ढंग से या अनुबंध से स्वतंत्र रूप से कार्य नहीं कर सकता है।

एसोसिएटेड इंग में। को. वी. सरकार A.P. से। [(1991) 4 एस. सी. सी. 93] इस न्यायालय ने स्पष्ट रूप से से अभिनिर्धारित किया कि मध्यस्थ अनुबंध के मापदंडों से परे यात्रा नहीं कर सकते हैं। सुदर्शन ट्रेडिंग कंपनी बनाम सरकार। केरल का [(1989) 2 एस. सी. सी. 38] इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि कोई अधिनिर्णय इस आधार पर प्रेषित या अपास्त किया जा सकता है कि मध्यस्थ ने इसे बनाने में अपनी अधिकारिता से अधिक किया था और मामलों के साक्ष्य जो इसके सामने उपस्थित नहीं हुए थे, को यह स्थापित करने के लिए स्वीकार किया जाएगा कि क्या अधिकारिता से अधिक किया गया था या नहीं, क्योंकि विवाद की प्रकृति कुछ ऐसी है जो अधिनिर्णय के बाहर निर्धारित की गई है , जो भी मध्यस्थ द्वारा अधिनिर्णय में इसके बारे में कहा जा सकता है। इस न्यायालय ने आगे कहा कि एक मध्यस्थ जो अपने अधिकार

क्षेत्र से परे कार्य कर रहा है , निर्णय के चेहरे पर स्पष्ट त्रुटि से अलग आधार है।

अधिकार क्षेत्र के भीतर त्रुटि और अधिकार क्षेत्र से अधिक त्रुटि के बीच एक स्पष्ट अंतर है। इस प्रकार, मध्यस्थ मध्यस्थ की भूमिका अनुबंध की शर्तों के भीतर मध्यस्थता करना है। पक्षकारों ने अनुबंध के तहत उसे जो दिया है , उसके अलावा उसके पास कोई अधिकार नहीं है। यदि उसने अनुबंध से परे यात्रा की है , तो वह अधिकार क्षेत्र के बिना कार्य करेगा, जबकि यदि वह अनुबंध के मापदंडों के भीतर रहा है, तो उसके पुरस्कार पर इस आधार पर सवाल नहीं उठाया जा सकता है कि इसमें रिकॉर्ड के सामने एक स्पष्ट त्रुटि है।

हैल्सबरीज़ लॉज़ ऑफ़ इंग्लैंड के पैरा 577 में, चौथा संस्करण, वॉल्यूम। 2, कानून को निम्नलिखित शब्दों में कहा गया है:

> *एक मध्यस्थ (और बाद में कोई भी अंपायर) अपनी नियुक्ति के लिए समझौते से ही अपना अधिकार क्षेत्र प्राप्त करता है, इसलिए उसके लिए उस समझौते के किसी भी हिस्से को अस्वीकार करने या अपने अधिकार पर रखी गई किसी भी सीमा की अवहेलना करने के लिए कभी भी खुला नहीं है , उदाहरण के लिए, एक अंपायर नियुक्त करने के उसके अधिकार पर पर एक सीमा। न ही वह अपने पक्ष में कुछ प्रारंभिक बिंदु तय करके खुद को अधिकार क्षेत्र प्रदान कर सकता है जिस पर उसका अधिकार क्षेत्र निर्भर करता है। फिर भी वह इस प्रश्न पर विचार करने का हकदार है कि क्या उसके पास कार्य करने का अधिकार क्षेत्र है या नहीं ताकि वह खुद को संतुष्ट कर सके कि आगे*

बढ़ना सार्थक है, और एक पुरस्कार जो स्पष्ट रूप से या निहित रूप से इस तरह के निष्कर्ष को संदर्भित करता है, इसलिए अमान्य नहीं है।

मस्टिल और बॉयड द्वारा वाणिज्यिक मध्यस्थता में पृष्ठ 598 पर यह कहा गया हैः

"सबसे पहले, यह तर्क दिया जा सकता है कि एक मध्यस्थ जिसे अंग्रेजी कानून द्वारा स्पष्ट रूप से या निहित रूप से शासित अनुबंध के तहत उत्पन्न होने वाले विवाद के संबंध में नियुक्त किया जाता है , पक्षकारों द्वारा उस कानून के अनुसार मुद्दों पर निर्णय निर्णय लेने के लिए अधिकृत है , और किसी अन्य तरीके से नहीं। कोई भी निर्णय जो एक अलग आधार पर आगे बढ़ता है , पक्षकारों को बांधने के लिए मध्यस्थ के अधिदेश के दायरे से बाहर होता है। अधिकारिता के अभाव के कारण यह पुरस्कार तदनुसार शून्य है, क्योंकि मध्यस्थ ने कुछ ऐसा किया है जिसे करने के लिए पक्षकारों ने उसे कभी अधिकृत नहीं किया। दूसरा , पिछले दशक के दौरान तीन महत्वपूर्ण निर्णयों में परिणत होने वाली प्राधिकरण की एक रेखा से समर्थन प्राप्त करना संभव होगा जो इस प्रश्न पर पहुंचता है कि क्या एक न्यायाधिकरण ऊपर बताए गए तीन अर्थों में से पहले में 'अधिकार क्षेत्र' शब्द का उपयोग करके कानून के विपरीत प्रभावी ढंग से निर्णय ले सकता है। जबकि इस निर्णय का सुलह प्रशासनिक कानून पर एक ग्रंथ का विषय है , इसमें कोई संदेह नहीं है कि कुछ प्रकार के न्यायाधिकरणों के संबंध में कानून ने कानून की त्रुटियों के बीच अंतर

को मान्यता दी है जो अधिकार क्षेत्र में जाती हैं और जो नहीं करती हैं, और यह कि एक न्यायाधिकरण के बीच अंतर है जो खुद से गलत प्रश्न पूछकर निर्णय पर पर पहुंच गया है , और जिसने प्रश्न की सही पहचान की है, लेकिन कानून के संदर्भ में गलत उत्तर प्रदान किया है। इस अधिकार रेखा का अनुसरण करते हुए , यह कहा जा सकता है कि अंग्रेजी कानून द्वारा शासित शासित अनुबंध के तहत पक्षों के अधिकारों का निर्णय करने के लिए सशक्त एक मध्यस्थ , जो खुद से यह नहीं पूछता है कि उन अधिकारों के बारे में अंग्रेजी कानून का क्या कहना है, लेकिन यदि न्याय की एक अतिरिक्त-कानूनी अवधारणा के अपने विचारों के अनुसार मूल्यांकन किया जाता है तो अधिकारों का क्या होना चाहिए, या तो खुद से गलत सवाल पूछ रहा है, या वास्तव में कोई सवाल नहीं पूछ रहा है।

अलोपी प्रसाद एंड संस लिमिटेड बनाम भारत संघ [ए. आई. आर. 1960 एस. सी. 588: (1960) 2 एस. सी. आर. 793] में इस न्यायालय ने स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया कि यदि अनुबंध की अभिव्यक्त शर्तों की अनदेखी करते हुए हर्जाना दिया जाता है, तो मध्यस्थ कार्यवाहियों का कदाचार करेगा। इस संबंध में नैहाटी जूट मिल्स लिमिटेड बनाम ख्यालीराम जगन्नाथ [ए. आई. आर. 1968 एस. सी. 522: (1968) 1 एस. सी. आर. 821] का भी उल्लेख किया जा सकता है।

हेमन बनाम डार्विन्स लिमिटेड [(1942) 1 ऑल ई. आर. 337:1942 ए. सी. 356 (एच. एल.)] में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि एक नियम के रूप में एक

मध्यस्थ खुद को अधिकार क्षेत्र के साथ नहीं पहन सकता है जब उसके पास कोई नहीं है।

पैरा 622 में पृ. 330-31, इंग्लैंड के हाल्सबरी के कानून (4th Edn.) वॉल्यूम। 2 यह कहा गया है कि कदाचार होता है, उदाहरण के लिएः

(1) यदि मध्यस्थ या अंपायर उन सभी मामलों का फैसला करने में विफल रहता है जो उसे भेजे गए थे;

(2) यदि अपने अधिनिर्णय द्वारा माध्यस्थम् या अंपायर उन मामलों का विनिश्चय करना चाहता है जो वास्तव में संदर्भ के करार में सम्मिलित नहीं किए गए हैं; उदाहरण के लिए, जहां माध्यस्थम् ने भूमि पर रखे जाने वाले भवनों का किराया और मूल्य निर्धारित करने के स्थान पर पट्टा (गलत तरीके से) लिया है ; या जहां अधिनिर्णय में पक्षकारों को अनधिकृत निर्देश दिए गए हैं ; या जहां माध्यस्थम् को यह निदेश देने की शक्ति है कि क्या किया जाएगा , लेकिन उसके निर्देश तीसरे व्यक्तियों के हितों को प्रभावित करते हैं ; या जहां उसने पक्षकारों के अधिकारों के बारे में विनिश्चय किया है , उस अनुबंध के तहत नहीं , जिस पर मध्यस्थता ने कार्यवाही की थी, बल्कि किसी अन्य अनुबंध के तहत;

(3) यदि पुरस्कार असंगत है, या अनिश्चित या अस्पष्ट अस्पष्ट है; या यहां तक कि तथ्य की कुछ गलती है , हालांकि उस मामले में गलती या तो स्वीकार की जानी चाहिए या कम से कम किसी भी उचित संदेह से परे स्पष्ट होनी चाहिए;

एसोसिएटेड इंग में। [(1991) 4 एस. सी. सी. 93] यह आयोजित किया गया हैः (SCC pp. 104-05, paras 27-29)

"27. यदि मध्यस्थ अनुबंध के निर्माण में कोई त्रुटि करता है, तो वह उसके अधिकार क्षेत्र में एक त्रुटि है। लेकिन अगर वह अनुबंध से बाहर भटकता है और उन मामलों से निपटता है जो उसे आवंटित नहीं किए गए हैं, तो वह एक अधिकार क्षेत्र की त्रुटि करता है। उनके अधिकार क्षेत्र में जाने वाली इस तरह की त्रुटि को पुरस्कार के बाहर की सामग्री को देखकर स्थापित किया जा सकता है। ऐसे मामलों में बाहरी साक्ष्य स्वीकार्य है क्योंकि विवाद कुछ ऐसा नहीं है जो अनुबंध के तहत या उसके संबंध में उत्पन्न होता है या अनुबंध के निर्माण पर निर्भर करता है या पुरस्कार के भीतर निर्धारित किया जाता है। अधिकार क्षेत्र के रूप में विवाद एक ऐसा मामला है जो निर्णय से बाहर है या निर्णय में इसके बारे में जो कुछ भी कहा जा सकता है, उससे बाहर है। ऐसे मामलों में , बाहरी साक्ष्य को स्वीकार करके पुरस्कार की अस्पष्टता को हल किया जा सकता है। इस नियम का तर्क यह है कि विवाद की प्रकृति कुछ ऐसी है जिसे पुरस्कार में जो दिखाई देता है उससे बाहर और स्वतंत्र रूप से निर्धारित किया जाना है। इस तरह की अधिकार क्षेत्र की त्रुटि को पुरस्कार के लिए बाहरी साक्ष्य द्वारा साबित करने की आवश्यकता है।...

28. तत्काल मामले में, अंपायर ने अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर के मामलों का फैसला किया। उन्होंने अनुबंध की सीमाओं को पार कर लिया। वह निर्धारित क्षेत्र से बहुत दूर भटक गया। वह आवंटित कार्य से बहुत दूर

चला गया। उनकी गलती अनुबंध को गलत तरीके से पढ़ने या गलत अर्थ लगाने या गलत समझने से नहीं हुई, बल्कि सहमति से अधिक काम करने से हुई। यह उनके अधिकार क्षेत्र की जड़ में जाने वाली एक त्रुटि थी क्योंकि उन्होंने खुद से गलत सवाल पूछा, अनुबंध की अवहेलना की और अपने अधिकार से अधिक पुरस्कार दिया। कई मायनों में, यह पुरस्कार अनुबंध के प्रावधानों के विपरीत था। ...

29. हमारे विचार में, अंपायर ने अनुबंध की सीमाओं और स्पष्ट प्रावधानों की अनदेखी करते हुए अनुचित , तर्कहीन और मनमौजी तरीके से काम किया। उन दावों को देने में जो अनुबंध के प्रावधानों के पूरी तरह से विपरीत हैं, जिनके लिए उन्होंने उन्हें अनुमति देने में विशिष्ट संदर्भ दिया था , उन्होंने अपने अधिकार क्षेत्र की सीमाओं और अनुबंध की सीमाओं की स्पष्ट रूप से से अवहेलना करके खुद को गलत दिशा दी और गलत आचरण किया, जिससे उन्होंने अपना अधिकार प्राप्त किया।

उड़ीसा राज्य बनाम दंडासी साहू [(1988) 4 एस. सी. सी. 12] में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त कियाः (SCC p. 20, para 12)

"12. हमारी राय में, इस तरह की स्थिति के साक्ष्य से इस न्यायालय को प्रत्येक विशेष मामले में निर्णय की सावधानीपूर्वक जांच करनी चाहिए , लेकिन इससे न्यायालय यह घोषणा नहीं करता है कि सभी उच्च राशि के निर्णय अपने आप में खराब होंगे।

पौलोस बनाम केरल राज्य [(1975) 2 एस. सी. सी. 236] इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि कानूनी कदाचार का मामला तब पूरा हो जाएगा जब मध्यस्थ अपने स्वयं के निष्कर्ष पर भी एक असंगत निष्कर्ष पर पहुंचता है या बहुत ही भौतिक दस्तावेजों की अनदेखी करके निर्णय पर पहुंचता है जो एक न्यायपूर्ण और निष्पक्ष निर्णय में मदद करने के लिए विवाद पर प्रचुर प्रकाश डालते हैं।

के.भी. जॉर्ज बनाम सेकी सरकार , जल और विद्युत विभाग को। [(1989) 4 एस. सी. सी. 595] इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित कियाः (SCC p. 602, paras 15-16)

> *"15. तत्काल मामले में, 26-4-1980 को प्रत्यर्थियों द्वारा अनुबंध को समाप्त कर दिया गया था और इस तरह के सभी मुद्दे अनुबंध की समाप्ति से उत्पन्न हुए हुए थे और वे अपीलार्थी द्वारा मध्यस्थ के समक्ष दायर दायर पहली दावा याचिका में उठाए जा सकते थे। ऐसा नहीं किए जाने के कारण मध्यस्थ के समक्ष शेष विवादों को उठाने वाली दूसरी दावा याचिका स्पष्ट रूप से वर्जित है।*
>
> *16. माध्यस्थम् मामले में सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 11 में यथा उपबंधित न्यायिक प्रक्रिया के सिद्धांतों की प्रयोज्यता के बारे में प्रस्तुत करने के संबंध में, यह ध्यान देने योग्य है कि माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 41 में यह उपबंध है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंध माध्यस्थम् कार्यवाहियों पर लागू होंगे। न्यायपालिका के प्रावधान इन सिद्धांतों पर आधारित हैं कि कार्यवाहियों की कोई बहुलता नहीं होगी और कार्यवाहियों की अंतिमता होगी। यह मध्यस्थता कार्यवाही पर भी लागू होता है।*

इस न्यायालय ने सतीश कुमार बनाम सुरिंदर कुमार [ए. आई. आर. 1970 एस. सी. 833] के निर्णय से निम्नलिखित का उल्लेख कियाः (SCC pp. 602-03, para 17)

"पुरस्कार के प्रभाव के संबंध में वास्तविक कानूनी स्थिति विवाद में नहीं है। यह अच्छी तरह से तय किया गया है कि एक सामान्य नियम के रूप में , सभी दावे जो मध्यस्थता के संदर्भ का विषय हैं , उस निर्णय में विलय हो जाते हैं जो मध्यस्थ के समक्ष कार्यवाही में सुनाया जाता है और यह कि एक निर्णय घोषित होने के बाद , उक्त दावों के संबंध में पक्षों के अधिकार और देनदारियों का निर्धारण केवल उक्त निर्णय के आधार पर किया जा सकता है। एक पुरस्कार घोषित होने के बाद , मूल दावे पर कोई कार्रवाई शुरू नहीं की जा सकती है जो संदर्भ का विषय था। ... विद्वान न्यायाधीश के अनुसार , यह निष्कर्ष इस प्राथमिक सिद्धांत पर आधारित है कि पक्षकारों और उनकी निजता के बीच के रूप में , एक पुरस्कार उस सम्मान का हकदार है जो अंतिम उपाय के न्यायालय के निर्णय के कारण है। इसलिए , यदि पक्षकारों के बीच घोषित किए गए निर्णय को वास्तव में, या कानूनी रूप से, वर्तमान विवाद से निपटा हुआ माना जा सकता है, तो दूसरा संदर्भ अक्षम होगा। इस स्थिति पर भी गंभीर रूप से विवाद नहीं हुआ है और न ही किया जा सकता है।

भारत संघ बनाम जैन एसोसिएट्स [(1994) 4 SCC 665] में इस न्यायालय ने निम्नलिखित K.P. पौलोस [(1975) 2 एस. सी. सी. 236] और दंडासी साहू [(1988) 4 एस. सी. सी. 12] ने कहाः (SCC p. 671, para 8)

> *"8. इसलिए सवाल यह है कि क्या अंपायर ने पुरस्कार देने में कदाचार किया था। यह देखा गया है कि हर्जाने और लाभ की हानि के लिए दावे 11 और 12 अनुबंध के उल्लंघन पर आधारित हैं और धारा 73 दोनों दावों को हर्जाने के रूप में शामिल करती है। अंपायर, यह उच्च न्यायालय द्वारा आयोजित किया जाता है, प्रत्येक दावे पर यांत्रिक रूप से, अलग-अलग राशि प्रदान की जाती है। वह इस तर्कपूर्ण दलील पर जवाबी दावे पर विचार करने में भी पूरी तरह से विफल रहे कि यह विलंबित प्रतिवाद है। ये तथ्य न केवल अंपायर के मन की स्थिति को दर्शाते हैं, बल्कि मन के गैर-अनुप्रयोग को भी दर्शाते हैं , जैसा कि उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट है। इससे यह भी पता चलता है है कि उन्होंने निष्पक्ष और निष्पक्ष रूप से विवेकपूर्ण तरीके से कार्य नहीं किया जो विवादों को तय करने के लिए मध्यस्थ की क्षमता की जड़ तक जाएगा।*

सिक्किम सुब्बा एसोसिएट्स बनाम सिक्किम राज्य [(2001) 5 एस. सी. सी. 629] में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित कियाः (SCC p. 643, para 14)

> *अदालतों के लिए या तो 'कदाचार' शब्द को पूरी तरह से परिभाषित करना मुश्किल होगा या इसी तरह उन मामलों की गिनती करना मुश्किल होगा जिनमें अकेले हस्तक्षेप किया जा सकता था या नहीं किया जा सकता था। मानकों की शुद्धता बनाए रखने और पूर्ण*

विश्वास और श्रेय को बनाए रखने के साथ-साथ मध्यस्थता की वैकल्पिक विवाद निवारण विधि में विश्वास को प्रेरित करने के लिए विधि के न्यायालयों का कर्तव्य और दायित्व है, जब निर्णय के सामने यह कानून के एक प्रस्ताव पर आधारित दिखाया जाता है जो असंगत या दर्ज किए गए निष्कर्ष जो बेतुके या इतने अनुचित और तर्कहीन हैं कि कोई भी उचित या सही सोचने वाला व्यक्ति या प्राधिकरण रिकॉर्ड पर सामग्री या हस्तक्षेप करने के लिए कानून की शासी स्थिति के आधार पर इस तरह के निष्कर्ष पर नहीं आ सकता था।

महाराष्ट्र एसईबी बनाम स्टरलाइट इंडस्ट्रीज (भारत) [(2001) 8 एससीसी 482] में यह देखा गया थाः (SCC pp. 486-87, para 12)

"12. कानून के इस प्रतिपादन के आलोक में , हमारा विचार है कि जब तक तत्काल मामले में याचिकाकर्ताओं के लिए विद्वान वकील द्वारा इंगित की की जाने वाली कानून की त्रुटि पुरस्कार के चेहरे पर पेटेंट नहीं है, तब तक न तो उच्च न्यायालय और न ही यह न्यायालय पुरस्कार में हस्तक्षेप कर सकता है। पक्षकारों के बीच किए गए अनुबंध के खंड 14 (II) की जांच करके किया जाने वाला अभ्यास , उसी को ठीक से समझते हुए और उसके बाद किसी न किसी तरह से किसी निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए उस पर कानून लागू करना, एक प्रक्रिया है और यह नहीं कहा जा सकता है कि ऐसी त्रुटि स्पष्ट है या पुरस्कार के सामने सामने पेटेंट है। चाहे किसी अनुबंध के नियमों और

शर्तों के संदर्भ में, खंड 14 (II) के रूप और प्रकृति में कोई शर्त भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 73 के अपवर्जन के लिए एक विशेष प्रावधान के रूप में कार्य करती है, किसी मामले में तथ्यों की सराहना का विषय है, और जब उस पर निर्णय स्पष्ट रूप से बेतुका बेतुका या पूरी तरह से अनुचित नहीं है तो निर्णय को चुनौती देने वाले न्यायालयों द्वारा हस्तक्षेप की कोई गुंजाइश नहीं है।

पश्चिम बंगाल राज्य भंडारण निगम बनाम . सुशील कुमार कयान [(2002) 5 एससीसी 679] इस न्यायालय ने राय दीः (SCC p. 684, para 11)

"यह निर्धारित करने के लिए कि क्या मध्यस्थ ने अपने अधिकार क्षेत्र से अधिक कार्य किया है , यह देखा जाना चाहिए कि क्या दावेदार मध्यस्थ के समक्ष कोई विशेष दावा कर सकता है। यदि अनुबंध या कानून में कोई विशिष्ट अवधि है जो पक्षकारों को मध्यस्थ के समक्ष कोई मुद्दा उठाने की अनुमति नहीं देती है और यदि बिंदु उठाने के अनुबंध में कोई विशिष्ट प्रतिबंध है, तो मध्यस्थ द्वारा पारित निर्णय उसके अधिकार क्षेत्र से अधिक होगा।

इसलिए, उच्च न्यायालय को अपीलार्थी द्वारा दायर आपत्तियों पर उपरोक्त दृष्टिकोण से विचार करने की आवश्यकता थी।

भारत कोकिंग कोल लिमिटेड बनाम एल.के. आहूजा एंड कंपनी [(2001) 4 एस. सी. सी. 86] , जिस पर श्री

सिन्हा ने मजबूत निर्भरता रखी है, को इस मामले में लागू नहीं माना जा सकता है क्योंकि इसमें न्यायालय एक संकर पुरस्कार से संबंधित था। अदालत यह पता लगाने की स्थिति में नहीं थी कि क्या प्रिंसिपल या अन्य सामग्रियों द्वारा आपूर्ति की गई सामग्री के खिलाफ वृद्धि शुल्क लगाया गया था।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि किसी निर्णय की वैधता पर विचार करते समय इस न्यायालय का अधिकार क्षेत्र सीमित है जैसा कि इस न्यायालय द्वारा इस्पात इंग में कहा गया है। एंड फाउंड्री वर्क्स [(2001) 6 एससीसी 347]: (SCC p. 350, para 4)

> *"4. यह दर्ज करने की आवश्यकता नहीं है कि ऐसे मामलों की एक लंबी श्रृंखला मौजूद है जिसके माध्यम से कानून काफी अच्छी तरह से तय प्रतीत होता है कि अदालत द्वारा साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन अनुमत नहीं है। यह न्यायालय अपने नवीनतम निर्णयों में से एक (अरोसन एंटरप्राइजेज लिमिटेड बनाम भारत संघ [(1999) 9 एस. सी. सी. 449]) में चैंपसी भरा एंड कंपनी बनाम जीवराज बल्लू एसपीजी में निर्णयों पर विचार करने पर। & डब्ल्यूवीजी. कं. लिमिटेड [एआईआर 1923 पीसी 66:1923 एसी 480] भारत संघ बनाम बंगो स्टील फर्नीचर (पी) लिमिटेड [एआईआर 1967 एससी 1032: (1967) 1 एससीआर 324] , एन. चेलप्पन बनाम। सचिव , केरल एसईबी [(1975) 1 एससीसी 289], सुदर्शन ट्रेडिंग कंपनी बनाम सरकार। केरल [(1989) 2 एस. सी. सी. 38],*

राजस्थान राज्य बनाम पुरी कंस्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड [(1994) 6 एस. सी. सी. 485] और ओलंपस सुपरस्ट्रक्चर्स (पी) लिमिटेड बनाम मीना विजय खेतान [(1999) 5 एस. सी. सी. 651] में भी कहा गया है कि न्यायालय द्वारा साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन अनुमेय नहीं है और वास्तव में, साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने की शक्ति का प्रयोग मध्यस्थता अधिनियम की धारा धारा 30 के तहत कार्यवाही के लिए अज्ञात है। अरोसन एंटरप्राइजेज [(1999) 9 एस. सी. सी. 449] में इस न्यायालय ने स्पष्ट रूप से कहा कि निर्णय में कोई कारण नहीं होने की स्थिति में, न्यायालय के हस्तक्षेप का प्रश्न बिल्कुल भी नहीं उठेगा। यदि , हालांकि, कारण हैं , तो हस्तक्षेप तब भी उपलब्ध नहीं होगा जब तक कि निश्चित रूप से , पुरस्कार में कुल विकृति मौजूद न हो या निर्णय कानून के गलत प्रस्ताव पर आधारित न हो। इस न्यायालय ने यह अभिलिखित किया कि यदि विधि के प्रश्न पर दो दो विचार संभव हैं , तो न्यायालय मध्यस्थ के निर्णय में हस्तक्षेप करना उचित नहीं होगा यदि जिस दृष्टिकोण का सहारा लिया गया है वह एक एक संभावित दृष्टिकोण है। चैम्पसी भरा [ए. आई. आर. 1923 पी. सी. 66:1923 ए. सी. 480] में लॉर्ड डुनेडिन की टिप्पणियों को इस न्यायालय द्वारा बंगो स्टील फर्नीचर [ए. आई. आर. 1967 एस. सी. 1032: (1967) 1 एस. सी. आर. 324] में इस प्रभाव के लिए स्वीकार और अपनाया गया है कि न्यायालय को मामले

के गुणागुण की जांच करने या यह पता लगाने के उद्देश्य से कि मध्यस्थ ने कानून की त्रुटि की की है या नहीं , अभिलेख में दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्य की जांच करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था। वास्तव में, न्यायालय अपने स्वयं के मूल्यांकन को प्रतिस्थापित नहीं कर सकता है और इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता है कि मध्यस्थ ने पक्षों के बीच सौदेबाजी के विपरीत काम किया था।

हालांकि, जैसा कि पहले यहां देखा गया है यह मामला एक अलग आधार पर खड़ा है, अर्थात्, मध्यस्थ ने कुछ मदों के संबंध में निर्णय पारित करते समय अनुबंध के प्रासंगिक खंडों को ध्यान में रखने में विफल रहा और/ या उपेक्षा की , और न ही उसने एक सही तथ्य पर पहुंचने के उद्देश्य से प्रासंगिक सामग्री को ध्यान में रखा। इस तरह का आदेश कानून में गलत दिशा के बराबर होगा।

इसलिए हमारी राय है कि इस मामले पर पुनर्विचार की आवश्यकता है। इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और विशेष रूप से इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि मामला दस्तावेज़ की शुद्ध व्याख्या से से संबंधित है जो कानून के प्रश्न को जन्म देता है और इसके इसके बजाय और मामले को नामित मध्यस्थ को प्रेषित करने के स्थान पर , हम निर्देश देंगे कि दावा आइटम 3,7 और 11 के संबंध में विवाद माननीय न्यायमूर्ति D.N. प्रसाद, झारखंड उच्च न्यायालय के एक सेवानिवृत्त न्यायाधीश, ऐसे नियमों और शर्तों पर जिन पर पक्षों द्वारा पारस्परिक रूप से सहमति हो सकती है। विद्वत मध्यस्थ से अनुरोध है कि वह इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि

मामला लंबे समय से लंबित है , अपना पुरस्कार जल्द से जल्द देने की वांछनीयता पर विचार करे।

इन अपीलों को उपरोक्त सीमा तक अनुमति दी गई है। है। कोई खर्च नहीं।

Translated by:
Pratik Kumar